शिक्षा का इतिहास

मनीष जैन

इस अंक से हम शिक्षा विमर्श में 'शिक्षा का इतिहास' शृंखला की शुरुआत कर रहे हैं। इस कड़ी में पहला आलेख शिक्षा के इतिहास का क्या अर्थ है, क्या कार्यक्षेत्र है, किस-किस तरह के प्रश्नों की पड़ताल की गई है और हो सकती है, शिक्षा के इतिहास के स्रोत कौनसे हैं; आदि प्रश्नों को उठाता है। भविष्य में इस शृंखला में हम भारत और अन्य देशों में शिक्षा के इतिहास पर शोध लेख, विभिन्न परिप्रेक्ष्य, अलग-अलग मुद्दों पर बहसें और ऐतिहासिक स्रोत भी प्रस्तुत करेंगे।

आम तौर पर भारत में शिक्षा पर बातचीत और शैक्षिक विमर्शों में शिक्षा के इतिहास और ऐतिहासिक दृष्टिकोण को इतना महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता है जितना समझा जाना चाहिए। भारत में शिक्षण-प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में अगर शिक्षा के इतिहास के नाम पर कुछ मिलता भी है तो विभिन्न समितियों, आयोगों और सरकारी नीतियों की अनुशंसाओं की एक लंबी सूची। इन दोनों ही स्थितियों में शिक्षा के प्रति ऐतिहासिक दृष्टिकोण और एक ऐतिहासिक समझ विकसित नहीं होती है।

हम पूछ सकते हैं कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण और समझ की क्या जरूरत है? शिक्षा के इतिहास का अध्ययन किस तरह शिक्षा की ऐतिहासिक समझ विकसित करने में मदद कर सकता है? यह समझ किस प्रकार शैक्षिक शब्दावली, चिंताओं, विमर्श और विचारों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखती है? क्या ऐतिहासिक दृष्टिकोण नीतियों, कार्यक्रमों और उन पर हुए वाद-विवादों की बेहतर समझ बनाने में मदद करता है? और शिक्षा के इतिहास के जरिए शिक्षा जगत के कर्ताओं-परिजन, अध्यापक-अधिकारी, बच्चों, उनके क्रियाकलापों और उद्देश्यों पर क्या रोशनी पड़ती है?

ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अभाव में वर्तमान, उसकी चिंताएं, प्रश्न और परियोजनाएं बिल्कुल नई महसूस होती हैं। किस तरह ऐतिहासिक अनुभव, अवधारणाएं, मान्यताएं और प्रथाएं हमारी आज की कार्यप्रणाली में उपस्थित हैं और किस तरह आज की शिक्षा स्वयं एक खास वक्त, समाज, दबावों, विचारों द्वारा गढ़ी जा रही है, इसका अज्ञान 'आज' के बारे में भी अधूरी समझ पैदा करता है। और यह अधूरी समझ न तो आज की चुनौतियों को समझने देती है, न कल के अनुभव से आज के लिए क्या सबक उभरते हैं, इसी की सीख देती है। यह अधूरी समझ, उन वृहद् सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक संदर्भों, जिनमें शिक्षा फंसी है, की अवहेलना कर शिक्षा को एक स्वतंत्र, मिथकीय, जादुई ताकत देती है।

शिक्षा का इतिहास हमारी आज की शिक्षाशास्त्रीय मान्यताओं, परंपराओं, व्यवहारों और तरीकों की जड़ों और विकास के बारे में हमारी समझ गहरा सकता है। आज का पाठ्यक्रम किन पड़ावों से गुजरा है, उस पर कल की क्या छाया है और स्कूली पाठ्यक्रम में कौनसा विषय कब जुड़ा या निकाला गया और क्यों, जैसे सवालों

का जवाब शिक्षा के इतिहास द्वारा मिल सकता है। शिक्षा का इतिहास एक ओर विद्यालय की बंद दुनिया - पाठ्यक्रम, परिक्षाओं, समय-सारिणी, अनुशासन, गणवेश, प्रातःकालीन सभाओं और आयोजनों के ऐतिहासिक चरित्र की ओर इशारा करता है। दूसरी ओर, उसमें काम करते, जीते, गुजरते लोगों के अनुभव, कामों, मेहनत, दुखों और संघर्षों को पुनर्निर्मित करता है।

साथ ही साथ शिक्षा की ऐतिहासिक समझ आज की शिक्षा व्यवस्था के उदय, उसके आधुनिक राज्य, औद्योगीकरण, लोकतंत्र के उभार, राष्ट्र-राज्यों के विकास और राष्ट्रवाद की भावना के विकास में शिक्षा की भूमिका को भी समझने में हमारी मदद कर सकता है। जहां एक ओर 'आधुनिक' शिक्षा का इतिहास निरंतर प्रगति, विकास और आजादी का आख्यान बनता है, वहीं उसकी ज्ञान-मीमांसीय हिंसा, औपनिवेशिक आधिपत्य तथा 'विकास' आधारित हिंसा और शोषण में हिस्सेदारी का ऐतिहासिक विवेचन हमें वर्तमान समाज, शिक्षा और विकास की दशा, दिशा और विकल्प पर भी सोचने के कारण और बिंदु दे सकता है।

शिक्षा का इतिहासः कुछ प्रश्न

शिक्षा का इतिहास किन सवालों को उठाता है और कौनसे साक्ष्यों और स्रोतों का इस्तेमाल करता है? क्या शिक्षा का इतिहास केवल एक वृतांत्त है या उसमें वृतांत्त और व्याख्या आपस में गुंथे हुए हैं? इतिहासकार, उसका दृष्टिकोण, प्रश्न और ऐतिहासिक साक्ष्य कैसे एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए बीते वक्त की शिक्षा का वृतांत्त और आख्यान रचते हैं? क्या शिक्षा का इतिहास भूतकाल की शिक्षा का एक गैर-विवादित, एक रेखीय, कालक्रम आधारित विवरण है? या जिन अवधारणाओं का इस्तेमाल ऐतिहासिक घटनाक्रम संजोने में किया गया है उनकी बदलती समझ और उन पर उठते प्रश्न, उस ऐतिहासिक वृतांत्त, उसके महत्त्व और कारण-कारक-प्रभाव की व्याख्या को ही सवालों के घेरे में ले आते हैं?

क्या शिक्षा के इतिहास को समाज के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक इतिहास से अलग रखकर समझा जा सकता है? शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन में क्या संबंध है? क्या शिक्षा केवल बाहरी दबावों, प्रभावों और ताकतों के द्वारा तय होती है या शिक्षा भी सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक-आर्थिक ढांचों, राज्य निर्माण, सामाजिक सत्ता संबंधों और सांस्कृतिक संघर्षों को प्रभावित करती है, रचती है और इनमें आपस में द्वैध रिश्ता है? अगर हम शिक्षा और विद्यालय को अपने में एक बंद संस्था के तौर पर भी देखें तो उनका क्या इतिहास होगा? शिक्षा के सामाजिक इतिहास का विचारों के इतिहास और उनके प्रभावों से क्या रिश्ता है (टायक 1983)?

शिक्षा के इतिहास के बारे में होती अनेक बहसों में उसे यह सवाल इतिहास और ऐतिहासिक दृष्टिकोण के बारे में होती बहसों से जुड़े हैं। इसलिए बेहतर होगा कि हम पहले उन पर नजर डालें।

इतिहास और ऐतिहासिक दृष्टिकोण

हालांकि 'इतिहास क्या है' इसकी समझ लगातार बदली है और यह आज भी बहस का विषय है। फिर भी हम कह सकते हैं कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अर्थ किसी भी विचार, घटना, व्यक्ति, समूह, प्रक्रिया, संस्था, वस्तु आदि को समय और समाज के संदर्भ में रखकर देखना है। इसका अर्थ है कि उन्हें समयक्रम में रखते हुए समझा जाए। जो आज है, जरूरी नहीं है वह कल भी ऐसा ही था या रहेगा। जो कल था, उसे आज के पैमानों और संदर्भ में नहीं, बल्कि उस समय विशेष और संदर्भ विशेष में समझा जाए। उस वक्त के जूते पहनकर उस वक्त में जाया जाए। यह संभव है कि भूतकाल को समझने और पुनर्निर्मित करने की यह यात्रा, आज के प्रश्नों, चिंताओं और समस्याओं की जड़ें, संदर्भ और उनकी वंशावली-यात्रा (Genealogy) खोजने

लेखक

मनीष जैन

'19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से नागरिकशास्त्र की पाठ्यचर्या और नागरिक का विचार' पर शोध प्रबंध, 10 वर्ष तक विद्यालय में शिक्षण कार्य तथा एससीईआरटी, दिल्ली एवं एनसीईआरटी के साथ पाठ्यपुस्तक निर्माण में भागीदारी। आजकल अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली में अध्यापन कर रहे हैं।

से उपजी हो। पर ऐसी किसी भी कोशिश को बताना होगा कि अलग-अगल वक्त में कोई संस्था, संबंध, समस्या, विचार कैसे उपजा, कैसे विकसित हुआ, क्या बदला और क्या निरंतरता बनी रही। अलग-अलग कालखंड में बदलाव और निरंतरता की यह खोज ऐतिहासिक दृष्टिकोण का हिस्सा है।

इसी खोज को आगे बढ़ाते हुए अनेक इतिहासकार इन बदलावों और निरंतरता के कारणों और प्रभावों को भी ढूंढ़ने और व्याख्यायित करने की कोशिश करते हैं। अब इतिहासकार केवल आरंभ बिंदु से ही मतलब नहीं रखता बल्कि उनके साथ जुड़ी अवधारणाओं की वैधता और अर्थ भी ऐतिहासिक विवेचना के हिस्से बन गए हैं। पश्चिमी देशों में पहले पुनर्जागरण के साथ शिक्षा में हुए बदलावों पर शोध होते थे। अनेक इतिहासकारों ने आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के जन्म और जन शिक्षा के फैलाव को 'औद्योगीकरण', 'शहरीकरण' और 'मजदूर वर्ग' के उदय से जोड़ा। इसी तरह औपनिवेशित देशों की शिक्षा पर हुए शोध 'उपनिवेशवाद' के असर और 'औपनिवेशिक शैक्षणिक नीतियों' की अवधारणात्मक श्रेणियों का इस्तेमाल करते थे। अब 'पुनर्जागरण', 'औद्योगीकरण', 'शहरीकरण' और 'मजदूर वर्ग' की अवधारणाओं पर ही प्रश्न किए जाने लगे। इन विषयों पर ऐतिहासिक अनुसंधान अब यह भी पूछते हैं कि क्या कोई मजदूर वर्ग या उपनिवेशवादी नीति थी और इन अवधारणाओं का क्या अर्थ है (सिल्वर 1983, 2-5)?

इतिहास में इस्तेमाल की जाने वाली ऐसी अनेक अवधारणाएं और श्रेणियों पर विवादों और प्रश्नों का इतिहासकारों और शिक्षा के इतिहासकारों के लिए क्या निहितार्थ है? इसका अर्थ है कि शैक्षणिक विकास, नीतियां, रवैयों और कार्य के वृहद् सामाजिक बदलावों के बारे में बनी आम मान्यताएं नाकाफी होंगी। इनकी जगह कहीं अधिक जटिल, सूक्ष्म और परिष्कृत संकेतों और व्याख्याओं की जरूरत है। साथ ही ऐतिहासिक स्रोत, दस्तावेज और साक्ष्य-क्षेत्र की भी समझ बदली है (सिल्वर, 1983, 2-4; नीलाद्री भट्टाचार्य 2003, 18)। और इनकी रोशनी में जटिल शैक्षणिक घटनाक्रम और प्रक्रियाओं को एक अकेले कारक तक सीमित रखने का कोई अर्थ नहीं है।

पहले केवल लिखित दस्तावेजों को ही ऐतिहासिक स्रोत माना जाता था। औपनिवेशिक मानवशास्त्रियों एवं इतिहासकारों ने मौखिक साक्ष्यों का भी इस्तेमाल कर औपनिवेशिक अभिलेखों का निर्माण किया और फिर केवल औपनिवेशिक अभिलेखागार ही इतिहास के प्रामाणिक स्रोत माने जाने लगे। एक ओर मौखिक इतिहास, साक्ष्यों और स्मृतियों को मिथक, आत्मनिष्ठ, व्यक्तिपरक और अप्रमाणिक कहकर दरकिनार किया गया। दूसरी ओर, औपनिवेशिक अभिलेखों की केन्द्रीयता तथा मौखिक इतिहास, साक्ष्यों और स्मृतियों की अवहेलना पर प्रश्न उठाए गए। 'अभिलेखागार' और साक्ष्य की समझ और धारणा का विस्तार करते हुए 'मौखिक अभिलेखागार', 'सामुदायिक अभिलेखागार' और स्मृति आधारित प्रमाणों को ऐतिहासिक साक्ष्य के तौर पर शामिल किया गया है। स्मृति प्रमाणों (Memorial Testimony) को एक-दूसरे की तुलना और लिखित प्रमाण के बरक्स पढ़ा गया है (नीते, 2013)। दृश्य-श्रव्य प्रमाणों के इस्तेमाल के साथ-साथ, शोध के नए विचारों और विषयों से प्रेरित होकर नए किस्म के साक्ष्यों की खोज जारी है और दस्तावेज विभिन्न मतभेदों के साथ पढ़े और व्याख्यायित किए जा रहे हैं (नीलाद्री भट्टाचार्य, 2003)।

सैद्धांतिक दृष्टिकोणों और उपागमों में बदलाव के साथ नए सवाल पूछे जाने और उनका जवाब ढूंढ़ने के लिए नए साक्ष्यों की खोज या पुराने साक्ष्यों की पुनर्व्याख्या की गई है। एक बेहद सुन्दर दृष्टांत हम प्रसिद्ध नारीवादी इतिहासकार डॉ. उमा चक्रवर्ती (2006) से पा सकते है। एक इतिहासकार इसके तौर पर अपनी यात्रा के आत्मवृतांत्त में उमा चक्रवर्ती बताती हैं कि 1950-60 के दशक में 'प्राचीन' भारत में धर्म, संस्कृति और समाज के मुख्य स्रोत ब्राह्मणवादी पाठ/किताब (2006) इतिहास के पाठ्यक्रमों में थीं। इतिहासकार धर्मानंद कौसांबी ने श्रम करने वाले लोगों, जिन्हें 'इतिहास' में कोई जगह नहीं मिलती थी, को केन्द्र में रख इतिहास लिखा। अब प्राचीन भारत का इतिहास 'महानता' के रूपक के अलावा श्रम, भूख, कलंकित और हाशिये पर धकेल दिए गए

लोगों और प्रक्रियाओं का भी इतिहास था। दासप्रथा पर अपने ऐतिहासिक शोध में देवराज चानना ने अर्थशास्त्र और संस्कृत के महाकाव्यों के साथ-साथ पाली स्रोतों का उपयोग किया। दोनों को समकक्ष महत्त्व देते हुए उन्होंने बताया कि जहां संस्कृत साहित्य में केवल राजाओं और ईश्वर की बात होती थी, वहीं पाली स्रोत रोजमर्रा के जीवन, सभी सामाजिक समूहों, यहां तक कि भिखारियों, नौकरों, वेश्याओं और चोरों की भी बात करते हैं (चक्रवर्ती 2006ः में पृ. xxi उद्धृत)। अपने शोध में उमा चक्रवर्ती ने जातक कथाओं का इस्तेमाल किया, जिन्हें पहले ऐतिहासिक स्रोत व साक्ष्य नहीं माना जाता था। उन्होंने पाया कि प्राचीन भारत में भी भुखमरी और अभाव था, घर से निकाल दी गई औरतें, आज की तरह, घरेलू नौकरानियों की तरह काम करती थीं। ऐसे में नए ऐतिहासिक स्रोत और उनके साक्ष्य प्राचीन भारत में सभी के लिए खुशहाली और बहुतायत के ऐतिहासिक लेखन पर प्रश्न खड़े करते हैं।

आइए, अब देखें कि शिक्षा के बारे में ऐतिहासिक दृष्टिकोण किस तरह के सवालों को खड़ा कर सकता है और हमें अपनी समसामयिक धारणाओं को समझने के लिए क्या दृष्टि, क्या चश्मा देता है?

शिक्षा और ऐतिहासिक दृष्टिकोण

अगर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से शिक्षा की बात करें तो सबसे पहला सवाल तो 'शिक्षा' के अर्थ पर ही खड़ा होगा। अलग-अलग वक्त पर शिक्षा को किस तरह परिभाषित किया गया? उसके क्या उद्देश्य थे? क्या अलग-अलग इलाकों और समूहों में यह परिभाषा और उद्देश्य एक से थे? किस ज्ञान को 'ज्ञान' माना गया और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तथा एक पीढ़ी के ही इंसानों में यह ज्ञान किस तरह संप्रेषित किया जाता था? किस ज्ञान तक किसकी पहुंच थी और किसकी नहीं? क्या इस 'शिक्षा' और 'ज्ञान' को कोई खास संस्थायी रूप दिया गया? यह कौनसी संस्थाएं थीं? कौन लोग इस संस्था में काम करते थे और उनकी क्या भूमिकाएं थीं? क्या स्कूल, कॉलेज जैसी औपचारिक शिक्षा संस्थाओं के अलावा युवाओं पर असर डालने वाले अन्य प्रभावों, जैसे उपन्यास, फिल्म, इंटरनेट को भी शिक्षा के दायरे में शामिल किया जाए या नहीं?

शिक्षा के अर्थ, परिभाषा और उद्देश्य के बारे में ऊपर उठाए गए सवाल अमूर्त लग सकते हैं, लेकिन इतिहास में इसका मूर्त रूप हमें बतलाता है कि हर समयकाल, हर समाज और हर समूह के लिए शिक्षा कुछ खास उद्देश्यों से प्रेरित थी और आमतौर पर यह उद्देश्य सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक प्रश्नों और प्रकृति से इंसानों के संबंधों की समझ से जुड़े थे। एक अन्य काल खंड या समूह के लिए किसी अन्य वक्त या समूह की शिक्षा की परिभाषा, उद्देश्य और सांस्थानिक रूप पिछड़ेपन या प्रगति की निशानी हो सकते थे। और यह संभव था कि यह नया वक्त या समूह उनकी जगह नई परिभाषाएं और उद्देश्य लागू करता या उनकी 'अकलमंद नकल' करता।

आइए, इन बातों को समझने के लिए कुछ उदाहरणों पर नजर डालें। अंग्रेजी राज के आरंभिक काल में भारत में उपस्थित देशज विद्यालयों का उद्देश्य, रूप तथा अंततः खात्मा, शिक्षा की एक अलग समझ और नए सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक संरचनाओं और संबंधों से जुड़े थे। सर्व शिक्षा अभियान के तहत 'वैकल्पिक एवं अभिनव शिक्षा' के प्रयोग किए गए हैं। 'आइडिया' मोबाइल कंपनी के विज्ञापन में खुले मैदान में गांव के बच्चों को मोबाइल से 'शिक्षा' दी जाती है। इन दोनों उदाहरणों में दी जा रही शिक्षा क्या वास्तव में शिक्षा है या वह जगह 'स्कूल' कही जा सकती है या नहीं? इन सवालों पर होती बहस पिछली दो शताब्दियों में शिक्षा और 'विद्यालय' के अनुभव और परिभाषाओं से बनी समझ से प्रभावित है। यह सोचने योग्य सवाल है कि आमतौर पर हिन्दी फिल्मों-विज्ञापनों में विद्यालय के नाम पर कॉन्वेंट स्कूल, मिशनरी स्कूल या प्राइवेट स्कूल ही क्यों नजर आते हैं? क्या गरीब, हाशिये पर खड़े बच्चों की शिक्षा के लिए किए गए मिशनरी कामों, उनकी संवेदनशीलता और कॉन्वेंट स्कूलों की 'अच्छी शिक्षा' की पूर्वमान्यता का इतिहास ऊपर उल्लेख किए गए आइडिया मोबाइल के आज के विज्ञापन को प्रभावित करता दिखता है?

इसी तरह, बच्चे का उम्र के हिसाब से कक्षावार विभाजन, स्कूलों का नर्सरी, प्राथमिक, माध्यमिक विद्यालयों में बंटना भी ऐतिहासिक परिघटना है। विद्यालयों के भवनों की संरचना, कक्षाओं में डेस्क-चार्ट-ब्लैकबोर्ड, पाठ्यपुस्तकों, खेल के मैदानों, गणवेश, परीक्षाएं - सालाना, तिमाही और अब सतत मूल्यांकन, यह सभी ऐतिहासिक आविष्कार हैं। अगर हम औपनिवेशिक काल के शैक्षिक दस्तावेजों - पंचवर्षीय/वार्षिक शिक्षा प्रगति रपटों, शिक्षा विभाग के अधिकारियों के पत्र-व्यवहार, समिति रपट, आम जनता के पत्र और निवेदनों पर नजर डालें तो हम यह भी देख सकेंगे कि शिक्षा में धर्म का स्थान, नैतिक मूल्य, शारीरिक शिक्षा, अनुशासन आदि मसलों को किस तरह समझा गया। ऐतिहासिक विवेचना हमें यह भी समझने में मदद कर सकती है कि मारिया मांटेसरी के भारत में सात साल रहने, अध्यापकों को प्रशिक्षण देने, बड़े पैमाने पर मांटेसरी नर्सरी स्कूलों के खुलने का आपस में कोई रिश्ता है या नहीं; और अगर है तो क्या?

शिक्षा का इतिहासः दृष्टिकोण और उपागम

हमने 'इतिहास और ऐतिहासिक दृष्टिकोण' की बात करते समय यह कहा था कि इतिहासकार के दृष्टिकोण का ऐतिहासिक अनुसंधान के प्रश्नों, खोजे गए साक्ष्यों और साक्ष्यों की व्याख्या से नजदीकी अंतर्संबंध है। यह समझने के लिए कि किस तरह से विभिन्न दृष्टिकोणों और उपागमों ने शिक्षा के इतिहास के अध्ययन को प्रभावित किया है, क्या प्रश्न उठाए हैं, हम कुछ दृष्टिकोणों और उपागमों की चर्चा करेंगे।

पश्चिमी देशों में शिक्षा के इतिहास का आरंभिक दौर राष्ट्र-राज्य निर्माण के संदर्भ में शिक्षा को समझने का रहा। यह माना गया कि हर राष्ट्र-राज्य की विशिष्टता के चलते, हर देश की शिक्षा व्यवस्था की भी अपनी खासियत होगी। साथ ही माना गया कि देशभर में शिक्षा व्यवस्था का विकास एक सा होगा। इस मान्यता के तहत स्थानीय इतिहास, राष्ट्रीय शिक्षा के इतिहास का एक लघु रूप था। या फिर वह राष्ट्रीय मानक और आख्यान को पुनर्स्थापित करता था या उसका उल्लंघन। इस समझ में राष्ट्र एक समरूपीय इकाई था, जिसमें द्वंद्व और संघर्ष की जगह नहीं थी।

इतिहास लेखन की इस परंपरा को नए उपागमों से चुनौती मिली। स्थानीय इतिहास को राष्ट्रीय समष्टि का केवल एक अंश न मान, देशी शैक्षणिक ढांचे की स्थानीयता पर ध्यान दिया गया। भारत की शिक्षा का इतिहास अलग-अलग राज्यों का इतिहास है। राजे-रजवाड़ों के अधीन हिस्सों और ब्रिटिश अधीन भारत की शिक्षा का इतिहास एक ही नहीं है। बंगाल प्रेसीडेंसी, मद्रास प्रेसीडेंसी और बॉम्बे प्रेसीडेंसी में निजी, मिशनरी और सरकारी विद्यालयों को समर्थन और उनकी संख्या में अंतर ने अलग-अलग तरह की शिक्षा व्यवस्था रची। बड़ौदा, कोल्हापुर, त्रावणकोर के राजाओं द्वारा जनशिक्षा और हाशिये के समूहों की शिक्षा के लिए उठाए गए कदम राजपूताना और सौराष्ट्र-कठियावाड़ के शासकों द्वारा बनाई और लागू की गई नीतियों से किस तरह समान और अलग थे। इसका इतिहास स्थानीय विशिष्टताओं को ध्यान में रखे बिना नहीं लिखा जा सकता है। साथ ही, उस विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में कौनसे समूह, किन सामाजिक-धार्मिक सुधारों और आंदोलनों, सेना में भर्ती के कारण देश-विदेश में हुए अनुभवों और इलाके में लौटकर शुरू किए प्रयासों, व्यापार-खेती-उद्योगों में हुए किन बदलावों से प्रभावित होकर शिक्षा तक अपनी पहुंच कब बनाने लगे, इसका इतिहास केवल राष्ट्रीय राजनेताओं के क्रियाकलापों और सुपरिभाषित राष्ट्रीय उद्देश्यों के आधार पर नहीं रचा जा सकता है। स्कूलों की उपलब्धता एवं शैक्षणिक नतीजों को स्थानीय सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं, बच्चों और लड़कियों के श्रम, जनसंख्या, कर प्रावधानों और स्थानीय राजनीति के संदर्भ में देखा गया। स्थानीय इतिहास की सामग्री, प्रयोगों की सफलता-असफलता, विवादों और समझौतों के आधार पर शिक्षा का राष्ट्रीय इतिहास नए सिरे से रचा जा सकता है (ब्रिग्स 2000 : 154-158)।

शिक्षा के इतिहास के राष्ट्रीय आख्यान को दूसरी चुनौती तुलनात्मक इतिहास से मिली। विभिन्न समाजों के बीच

समानता और विभिन्नता को खोजने में इतिहासकारों ने एक ओर 'उन श्रेणियों और परिभाषाओं को स्थापित करने की कोशिश की जिनके आधार पर एक सी सामग्री से एक से प्रश्न किए जा सकें' (ब्रिग्स 2000 : 154)। दूसरी ओर, इस तुलनात्मक अध्ययन ने दिखाया कि कहीं और पैदा हुए विचार, प्रयोग और नीतियां अन्य देशों तक पहुंचीं। उन्होंने वहां की शैक्षणिक व्यवस्था और नीतियों पर प्रभाव डाला और कई बार उनकी वैसी की वैसी नकल की गई।

राष्ट्रवाद और राष्ट्र-राज्य निर्माण के बारे में हुई अवधारणात्मक बहसों और अनेक ऐतिहासिक शोधों ने कई और नए प्रश्न उठाए। इनमें राष्ट्र के भीतर विभिन्न सामाजिक समूहों और हितों के टकराव तथा राष्ट्र की परंपरा और भविष्य के बारे में हुई बहसें भी ऐतिहासिक शोध का विषय बनीं। यह पूछा गया कि अगर राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता की भावना के उभार और मजबूत होने की प्रक्रिया में राष्ट्र अपनी 'परंपरा का आविष्कार' (एरिक हॉब्सबॉम) करते हैं तो उसमें शिक्षा की क्या भूमिका होती है? क्या राष्ट्रीय परंपराओं की समझ शिक्षा और पाठ्यक्रम को प्रभावित कर रही थी? क्या राष्ट्रीय परंपरा की परिभाषाएं किसी एक या कई सामाजिक समूहों द्वारा अन्य समूहों पर अपना वर्चस्व बनाए रखने या स्थापित करने के लिए इस्तेमाल की जा रही थीं? औपनिवेशिक भारत में 'राष्ट्रीय शिक्षा' पर हुई इन बहसों में संस्कृत, अरबी, फारसी और अंग्रेजी का स्थान; विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का महत्त्व; लड़कियों को शिक्षा दें या नहीं दें; और दें तो कब तक, उन्हें क्या पढ़ाएं; क्या धार्मिक और नैतिक शिक्षा स्कूली पाठ्यचर्या और कार्यकलापों का हिस्सा हो; प्राथमिक शिक्षा या उच्च शिक्षा में किसको ज्यादा महत्त्व दिया जाए जैसे प्रश्न उठाए गए (देखें भट्टाचार्य, 2003)। इन बहसों के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के निर्माण को एक सी सहमति से उपजी व्यवस्था के बजाय उसके उद्देश्यों, संस्थायी स्वरूपों, मूल्यों, सामाजिक हितों के टकरावों के संदर्भ में समझा जाने लगा।

शिक्षा के इतिहास की एक अन्य प्रमुख परंपरा विचारों का इतिहास है। शुरुआती दौर में इसका अर्थ महान चिंतकों और शिक्षाशास्त्रियों के विचारों का अध्ययन था। अब बौद्धिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का यह उपागम विचारों की श्रृंखला और विभिन्न तरह के 'मीडिया' द्वारा विचारों के प्रचार-प्रसार को भी ऐतिहासिक शोध का विषय बनाता है। ऐसे में शिक्षा के इतिहासकार को महान शिक्षाशास्त्रियों की कृतियों एवं व्यक्तित्व के ऐतिहासिक विवेचन तक सीमित नहीं रखा गया। बौद्धिक एवं सांस्कृतिक उपागम के तहत विचारों में बदलाव, उन पर अन्य विचारों एवं अनुभवों के प्रभावों की भी पड़ताल की जाने लगी। यह पूछा गया कि छपाई के आविष्कार और फैलाव ने किस तरह साक्षरता के इतिहास को बदला। औपनिवेशिक भारत में प्रिंटिंग प्रेसों के अलग-अलग राज्यों में पनपने और स्कूली पाठ्यपुस्तकों तथा कॉलेजों की किताबों के व्यापार में उनकी उपस्थिति और प्रभाव के अध्ययनों की संख्या सीमित है (देखें स्टॉर्क 2007)। ऐसे में भारत में शिक्षा का इतिहास अधूरा ही है। हाल की 'संचार क्रांति' के संदर्भ में सोचें तो इंटरनेट, 24×7 घंटे चलने वाले टी.वी., नई विज्ञापनी दुनिया और आई.सी.टी. के शिक्षा में उपयोग की कोशिशें और कॉर्पोरेट जगत की उपस्थिति, ई-किताबों और टेबलेट की दुनिया, समकालीन शिक्षा के इतिहास के बारे में नए स्रोत और प्रश्न खड़े करते हैं। इनमें से कुछ प्रश्न पुराने प्रश्न हैं जो 'भाषा' का महत्त्व और 'सामाजिक नियंत्रण' के तरीकों को इन नए संदर्भों में उठाते हैं। दूसरी ओर यह बदलता परिदृश्य विचारों, सीखने-सिखाने की प्रक्रिया, मशीन बनाम इंसानी उपस्थिति, किताबों और अन्य पाठकों से भरे पुस्तकालय और कम्प्यूटर पर किताब पढ़ने की अकेली संस्कृति में अंतर और अनुभव के बारे में नए शोधों की मांग करते हैं।

शिक्षा के इतिहास में एक बड़ा बदलाव सामाजिक इतिहास और नारीवादी एवं जेंडर इतिहास के उपागमों एवं दृष्टिकोणों के उभार के साथ आया। यह सवाल उठा कि शिक्षा के इतिहास में समाज के उपेक्षितों, हाशिये पर धकेल दिए गए लोगों, वंचितों और सरकार तथा राज-काज में नगण्य भागीदारी रखने वाली आम जनता की क्या

जगह, आवाज और इतिहास है। ब्रिटेन के संदर्भ में सवाल उठाया गया कि क्या 19वीं शताब्दी में गरीबों और मजदूर वर्ग की शिक्षा की कोशिशें सामाजिक नियंत्रण की कोशिशें थीं? क्या 1850-70 के काल में एक बंद वर्ग आधारित शिक्षा व्यवस्था बनाने की कोशिश हुई और क्या यह व्यवस्था बाद में बदली? स्कूलों की उपलब्धता के अलावा स्कूली प्रक्रिया, शिक्षा पाने वालों का अनुभव क्या था? क्या स्कूल के मूल्य मध्यमवर्गीय मूल्य थे या वे मजदूर वर्ग के मूल्य थे? क्या पुराने स्कूलों के मुकाबले नए स्कूल मूलतः इन मजदूर वर्ग के बच्चों-परिवारों के लिए बेहतर स्कूल थे? क्या वे उनकी आवश्यकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील थे या अधिनायकवादी और नौकरशहाना अंदाज और नियम-कानूनों से चलते यह स्कूल, एक डरावना सपना थे? क्या मजदूर वर्ग के बच्चे सिर्फ भुक्तभोगी थे? मजदूर वर्ग अपने खुद और अपने बच्चों की शिक्षा के लिए क्या प्रयास कर रहा था (एलड्रिच 2000 : 260)?

इन प्रश्नों की ऐतिहासिक जांच-पड़ताल नए किस्म के ऐतिहासिक स्रोतों की मांग करती थी। इंग्लैंड की शिक्षा के इतिहासकारों के निजी मजदूर वर्ग के विद्यालयों, उनके उपस्थिति रजिस्टरों और पाठ्यक्रमों को खोजा। उन्होंने मजदूर वर्ग के लिए चलाए जाते रविवारीय स्कूलों के दस्तावेजों और 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इंग्लैंड में प्रारंभिक शिक्षा के कानूनों के बाद मजदूर वर्ग के निजी विद्यालयों की संख्या में गिरावट को दर्ज किया।

भारत के संदर्भ में सामाजिक-इतिहास आधारित जांच-पड़ताल और महत्त्वपूर्ण हो जाती है जब हम याद करते हैं कि हाल तक बड़ी संख्या में गरीब बच्चे स्कूल के बाहर रहे हैं। शिक्षा के लिखित दस्तावेजों में वंचित समूहों की उपस्थिति नगण्य है। और अगर उच्च जातियों- वर्ग के लड़कों की शिक्षा में अनपढ़ नौकर और महिलाएं भी अपनी भूमिका निभा रहे थे तो क्या परंपरा और आधुनिकता से एक साथ बने इस पढ़े-लिखे वर्ग की शिक्षा का इतिहास, इन अनुपस्थित और अनसुनी आवाजों के बिना पूरा हो सकता है (देखें, कुमार नीताः 2005)?

नारीवादी इतिहासकारों ने शिक्षा के इतिहास में लड़कियों और महिलाओं की शिक्षा की अनुपस्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए इतिहासकारों की चिंताओं और पद्धति दोनों के सामाजिक लैंगिक चरित्र पर प्रश्न उठाए। यह सवाल उठाया गया कि इतिहास कौन बनाता है, किसका अनुभव, संघर्ष, पहल, इतिहास में जगह पाती है और किसकी भूमिका पर ध्यान नहीं दिया जाता? इस आलोचना के तहत एक ओर प्रारंभिक शिक्षा से लेकर शिक्षा के विभिन्न चरणों तक लड़कियों की पहुंच, उनकी कक्षाओं में उपस्थिति, टिकने के साल, पाठ्यचर्या, नतीजे, अपेक्षाएं और नौकरी संबंधी प्रश्न उठाए गए। दूसरी ओर, शिक्षायी संस्थाओं की सामाजिक-लैंगिक पूर्वमान्यताओं के आधार पर लड़कियां क्या पढ़ें-कितना पढ़ें, कैसे व्यवहार करें, क्या वेशभूषा पहनें, अनुशासन का अर्थ, महिला अध्यापिकाओं के काम की स्थितियां और अपेक्षाओं को भी ऐतिहासिक शोध के दायरे में लाया गया।

नारीवादी दृष्टिकोण ने अनेक नए सवाल उठाए। क्या शिक्षा लड़कियों को वयस्क महिलाओं की भूमिका निभाने के लिए तैयार करने के लिए दी जा रही थी? क्या घर की जिम्मेदारियों को उठाती और उसके लिए तैयार की जाती लड़कियों के लिए शिक्षा और स्कूल का अर्थ और अनुभव लड़कों जैसा ही था? नारीत्व, पत्नी, मातृत्व और घरेलू भूमिका के विचारों ने किस तरह लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा तक पहुंच और उस शिक्षा की सामग्री को प्रभावित किया? क्या 'स्त्री' और 'लड़की' श्रेणियों को आपस में मिला देना, स्त्री को अवयस्क, बच्ची जैसी, निर्भर और 'कमजोर' दिखाना नहीं होगा? क्या शिक्षा के इतिहास में महिलाओं और लड़कियों के अनुभव को हाशिये पर रखा जाना, वृहद् समाज और इतिहास में उनकी स्थिति, दमन और वर्चस्व के रिश्तों से जुड़ा है? क्या 'स्त्री' होने का अर्थ और अनुभव, वर्चस्व व सामाजिक स्तरीकरण की अन्य श्रेणियों जैसे वर्ग, जाति, नस्ल, औपनिवेशिक अवस्थिति आदि से भी जुड़ा है?

नारीवादी प्रश्नों और दृष्टिकोणों ने इतिहासकारों को हर सामाजिक संस्था और प्रक्रिया के सामाजिक लैंगिक चरित्र

पर प्रश्न करने के साथ, नई जगहों और स्रोतों को खोजने के लिए कहा जिसके जरिए लड़कियों व महिलाओं का शिक्षायी अनुभव खोजा जा सके। सरकारी रपटों में उनकी आवाज की नगण्य उपस्थिति थी। कई बार यह भी पता नहीं चलता था कि महिलाओं के विचारों और उनके बारे में जानकारी किस तरह इकट्ठी की गई। ऐसे में 'निजी' स्रोतों, जैसे पत्र, डायरी, आत्मकथाओं का इस्तेमाल किया गया पर इन स्रोतों में भी समस्याएं थीं। क्योंकि ऐसी चीजें मध्यमवर्गीय महिलाओं द्वारा लिखे जाने की संभावना कहीं ज्यादा थी/है (पर्विस 2000 : 405-7)। ऐसे में अनेक नारीवादी इतिहासकारों ने अन्य लिखित स्रोतों के साथ-साथ मौखिक इतिहास के स्रोतों का भी उपयोग किया। भविष्य में अन्य लेखों में हम इस तरह के शोधों, उनके प्रश्नों और स्रोतों को भी इस श्रृंखला में प्रकाशित करेंगे।

अंततः

शायद इतना कहना ही काफी होगा कि शिक्षा के इतिहास की समझ बदली है और नए प्रश्न तथा स्रोत शिक्षा के ऐतिहासिक स्वरूप की बेहतर समझ बनाने में हमारी मदद करेंगे। ◆

(यह लेख योगेश स्नेही द्वारा सुझाए लेखों, विश्वंभर की टिप्पणियों और सुधार तथा ख्यालीराम के धैर्य के बिना संभव नहीं था)

संदर्भः

Aldrich, Richard (2000). 'Central Issues in History of Education', in Roy Lowe (ed.) History of Education: Major Themes, Vol. 1, Debates in the History of Education, London: Routledge, pp: 255-263.

Bhattacharya, Sabyasachi , (2003), 'Introduction', in Bhattacharya, Sabyasachi, Yagati, Chinna Rao (ed,) Educating the Nation: Documents on the Discourse of National Education in India 1880-1920, New Delhi: Kanishka Publishers in association with Educational Records Research Unit, Jawaharlal Nehru University, Pg ix-xxvii.

Bhattacharya, Sabyasachi, (2001), 'Introduction', in Bhattacharya, Sabyasachi, Bara, Joesph, Yagati, Chinna Rao and Sankhdher B.M., The Development of Women's Education in India: A Collection of Documents 1859-1920, New Delhi: Kanishka Publishers in association with Educational Records Research Unit, Jawaharlal Nehru University, pp: ix-xlviii.

Bhattacharya, Neeladri (2003). 'The Problem', Seminar, Rewriting History, February, pp: 12-18.

Briggs, Asa (2000). 'The Study of the History of Education', in Roy Lowe (ed.) History of Education: Major Themes, Vol. 1, Debates in the History of Education, London: Routledge, pp: 153-167.

Chakravarty, Uma (2006). 'History as Practice: Introduction', in idem Everyday Lives, Everyday Histories: Beyond the Kings and Brahmanas of 'Ancient' India', New Delhi: Tulika Books, pp: xvi-xxx.

Kumar, Nita (2005). 'Mothers and Non-Mothers: Gendering the Discourse of Education in South Asia', Gender and History, vol. 17/ no. 1/ April, pp. 154-182.

Nite, Dhiraj (2013). Memory and History. Unit 3 in Problems of Historical Knowledge, MA History core course MHC04, Monsoon Semester. Delhi: Ambedkar University.

Purvis, June (2000). 'The Historiography of British Education: A Feminist Critique', in Roy Lowe (ed.) History of Education: Major Themes, Vol. 1, Debates in the History of Education, London: Routledge, pp: 394-410.

Silver, Harold (1983). Introduction. In Education as History: Interpreting Nineteenth - and Twentieth - Century Education. London: Methuen, pp: 1-14.

Silver, Harold (2000). 'Historiography of Education', in Roy Lowe (ed.) History of Education: Major Themes, Vol. 1, Debates in the History of Education, London: Routledge, pp: 210-237.

Stark, Ulrike (2007). An Empire of Books: The Naval Kishore Press and the Diffusion of the Printed Word in Colonial India. Ranikhet: Permanent Black, pp: 1-28.

Tyack, David B. (1983). Foreword. In Harold Silver, Education as History: Interpreting Nineteenth - and Twentieth - Century Education. London: Methuen, pp: ix-xiii.